कोणार्क : प्रश्नोत्तरी

KONARK : Notes in Question-Answer Form :

(कश्मीर विश्वविद्यालय द्वारा बी० ए० के पाठ्यक्रम में निर्धारित जगदीशचन्द्र माथुर के नाटक कोणार्क का अध्ययन)

कपूर ब्रदर्स
श्रीनगर, कश्मीर

कोणार्क : प्रश्नोत्तरी

KONARK (Drama) by Jagdish Chandra Mathur

Notes in Question - Answer Form

(कश्मीर विश्वविद्यालय द्वारा बी० ए० के पाठ्यक्रम में निर्धारित
जगदीशचन्द्र माथुर के नाटक कोणार्क का अध्ययन)

लेखक

एक अनुभवी प्राध्यापक

प्रकाशक

कपूर ब्रदर्स

पुस्तक विक्रेता तथा प्रकाशक

लाल चौक, श्रीनगर (कश्मीर)

प्रकाशक
कपूर ब्रदर्स,
श्रीनगर

मूल्य : दो रुपये पच्चास पैसे

मुद्रक
इण्डो प्रिंटिंग प्रेस
श्रीनगर

कोणार्क : प्रश्नोत्तरी

विषय सूची

कोणार्क की सर्वोत्तम कुञ्जी

भूमिका

'कोणार्क' श्री जगदीशचंद्र माथुर का ऐतिहासिक नाटक है जिस में इतिहास तथा कल्पना का गंगा-यमुना सामंजस्य मिलता है। प्रस्तुत नाटक में प्राचीन तथा अर्वाचीन नाट्य-शैलियों का समन्वय किया गया है।

भारतीय संस्कृति, जीवन धारा तथा कला की विशेषताओं को प्रकाश में लाने के उद्देश्य से प्रस्तुत नाटक लिखा गया है।

भारत की कला में जीवन की विभिन्नताओं की झलक मिलती है। हमारे जीवन के प्रत्येक आंचल में जो सौंदर्य, सरसता तथा चिर लावण्य वर्तमान है, ललित कलाओं में उसकी रक्षा हुई है। 'कोणार्क' भारत की प्राचीन शिल्प-कला का मूर्तिमान प्रतीक है परन्तु कला की महिमा का गुणगान करते हुए यदि युग का स्वार्थी मानव 'कला' के उस निर्माता कलाकार को विस्मरण के प्रांगन में सुलायेगा तो यह 'कला' का अपमान है। कलाकार की उपेक्षा 'कला' को स्वीकार नहीं, जब जब भी ऐसा हुआ तब तब प्रलय को निमंत्रण मिला, महामरण का आह्वान हुआ और उस विनाशलीला में कला-कार के कुंवारे स्वप्न बिखर गये, उसकी कामना तथा साधना अधूरी रह गयी। 'कोणार्क' नाटक का यह प्रेरक भाव है जिसे नाटककार ने हमारे समक्ष रखा है। यह नाटक भली भान्ति विद्यार्थियों को हृदयंगम हो जाये, इस दृष्टिकोण को लेकर नाटक की कथावस्तु, टेकनीक आदि से सम्बन्धित प्रश्न, साहित्यक समीक्षा, प्रमुख-पात्रों का चरित्र चित्रण, कथासार, अंक-कथायें आदि सामग्री प्रस्तुत सहायक पुस्तक में परिश्रम पूर्वक तैयार की गई है।

आशा है कि विद्यार्थी मेरे इस प्रयास से सन्तुष्ट होंगे।

लेखक

प्रश्न १ :– श्री जगदीशचन्द्र माथुर के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर हिन्दी के सुप्रसिद्ध नाटककार तथा एकांकीकार हैं। आप का रचनाकाल सन् १९३६ से प्रारम्भ होता है।

माथुर जी की मुख्य विशेषता :— माथुर जी की मुख्य विशेषता यह है कि रंगमंच के सम्बन्ध में उनका अनुभव और अध्ययन गहन है और हिन्दी नाट्यकला के विकास में अपना विशेष स्थान रखता है। यही कारण है कि रंगमंच के अभिनय के योग्य नाटकों की आप रचना कर सके। 'कोणार्क' नाटक में नाटककार ने मंच-निर्देशन से सम्बन्धित अनेक उल्लेखनीय बातें पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की हैं।

रचनायें :— 'कोणार्क' के अतिरिक्त आपके उलेखनीय नाटकों तथा एकांकी नाटकों में 'कुँवर सिंह की टेक' 'शारदीया' 'भोर का तारा' 'ओ मेरे सपने' 'गगन सवारी' 'कलिंग-विजय' 'रीढ़ की हड्डी' 'मकड़ी का जाला' 'खिड़की की राह' 'घोंसले' 'कबूतर खाना' आदि प्रसिद्ध हैं।

भावभूमि तथा शैली :— आपके नाटकों की शैली, भाषा और टेकनीक, विषय की गुरु गम्भीरता के उपयुक्त है। उदाहरण के लिए 'कोणार्क' 'नाटक तथा 'भोर का तारा' एकांकी नाटक में नाटककार ने मानव मन के निगूढतम भावों का उद्घाटन किया है। भावों की तीव्रता, अभिनयशीलता, और अभि-

व्यक्ति का सर्वथा अपना ढंग श्री माथुरजी की अपनी चोज है। आपके नाटकों में विचार धारा, समस्या तथा वातावरण का पूर्ण परिपाक है।

विविध ढग के नाटक :— श्री माथुर ने विविध ढंग के नाटकों की रचना की है। आपने कतिपय ऐतिहासिक बनाम सांस्कृतिक नाटक लिखे हैं जैसे 'कोणार्क' आदि आपने कुछ व्यंग्यात्मक सामाजिक नाटकों की भी रचना की है जैसे 'भोर का तारा' 'रोड़ की हड्डी' आदि। आपका व्यंग्य जहां तीखा है वहाँ मर्मस्पशीर्य भो है। आपके नाटक सभ्य जगत की विविध समस्याओं पर व्यंग्य करते हैं। आप का व्यंग्य कई स्थलों पर 'विद्रोह' में बदल जाता है। रीड़ की हड्डी' की 'ऊमा' 'भोर का तारा' का 'शेखर' तथा 'कोणार्क' का 'धर्मपद' आपकी विद्रोहो मनोवृति का प्रतिनिधित्व करते है।

अन्त में यह कहना उचित तथा युक्ति संगत होगा कि श्री जगदीशचन्द्र माथुर का व्यक्तित्व तथा कृतित्व हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास का एक अमूल्य रत्न है।

प्रश्न २ :— हिन्दो नाटक के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालिए।

(काव्य में नाटक का स्थान)

उत्तर: – काव्य के दो भेद किये गये हैं श्रव्य काव्य तथा दृश्य काव्य। दोनों में दृश्य काव्य की अधिक महता है। नाटक

दृश्य काव्य के आवान्तर भेदों में मुख्य स्थान रखता है। नाटक रंग-मंच की वस्तु है। उसका वास्तविक आनंद पढने से प्राप्त नहीं होता। मानव चाहता है कि नाटक में वर्णित सारी घटनाओं को स्वयं अपनी आंखों द्वारा होता हुआ प्रत्यक्ष रूप में देखे। यही कारण है कि नाटक द्वारा पाठकों का विशेष रूप से मनोरंजन होता है। नाटक का महत्व काव्य में इसलिए अधिक है कि उसमें कल्पना की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि अमूर्त से मूर्त का प्रभाव अधिक पड़ता है। नाटक में कथोपकथन होता है, अभिनय रहता है और सभी कलाओं का संघर्ष। वह हमारे सामने इतिहास, समाज, अतीत और वर्तमान आदि सभी विषयों को प्रत्यक्ष रूप में लाकर खड़ा कर देता है। नाटक देखते हुए दर्शकों को यह अनुभव होता है कि वे जो कुछ देख रहे हैं उसमें तथा अपने निजी जीवन में कोई अन्तर नहीं। अत: नाटक को काव्य में सर्वोतम स्थान दिया गया है। 'काव्य में नाटक रम्य है, यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। नाटक जनता की वस्तु है। इसे पंचम वेद भी कहा गया है। नाटक में सभी कलाओं का समावेश रहता है। आचार्य भरत मुनि का यह वाक्य ठीक ही है:—
"योग, कर्म, शास्त्र, सारे शिल्प और विविध कार्यों में कोई ऐसा नहीं जो नाटक में न पाया जाता हो।"

नाटक की उत्पति :— नाटक की उत्पति के विषय में लोगों के भिन्न भिन्न मत हैं। वास्तव में उसकी उत्पति मानव की मूल प्रवृत्ति है, जिसके द्वारा वह दूसरों का अणुकरण करता

है। छोटा बालक जब बाल्यावस्था में ही मूँछे लगाने लगता है तो उसमें उसके पिता बनने का गौरव झलकता है। अनुकरण करने की यही प्रवृति नाटक के उदय होने का कारण भी है। भारत में नाटकों के उदय होने के सम्बंध में यह मत है कि महेंद्र आदि देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने नाट्य वेद के नाम से पंचम वेद के रूप में इसे बनाया और ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय, और अथवर्वेद से रस प्राप्त किया गया। शिवजी ने तांड़व नृत्य और पार्वती ने लास्य नृत्य से इसे विभूषित कर इसके अभिनय का कार्य भरत मुनि को सौंपा जिसने अपने १०० पुत्रों को नाटक के भिन्न भिन्न अंगों से शिक्षा देकर इसका अभिनय कराया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी में नाटक का विकास हिन्दी गद्य साहित्य के साथ साथ माना है। शुक्ल जी ने हिन्दी गद्य का प्रवर्तन भी नाटक ही से स्वीकार किया है।

हिन्दी में नाटक का उद्‌भव :— हिन्दी में नाटक के प्रथम-उत्थान-काल, के पूर्व में कोई नाटक नाटक के रूप में नहीं लिखा गया। कहने का तात्पर्य इतना है कि उन नाटकों में नाटकीय तत्वों का निर्वाह नहीं हुआ था। ये ही चार नाटक ब्रज-भाषा के थे उन में 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक ही प्रसिद्ध है।

प्रथम उत्थान - काल :—भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने सर्वप्रथम 'विद्या सुंदर' नामक बंगला भाषा से हिन्दी में अनुवाद करके सम्वत १९२५ में प्रकाशित करवाया। 'प्रवास' अधूरा ही रहा। उनके

समकालीन गद्य-लेखकों ने भी अधिकतर नाटकों की ही रचना की, जिन में श्री प्रतापनारायण मिश्र तथा बद्रीनारायण चौधरी का नाम उल्लेखनीय है। इस काल के नाटकों की निम्नस्थ विशेषतायें हैं :—

१) प्रस्तावना आदि की अवहेलना।
२) नाटकों का झुकाव सामाजिकता की ओर।
३) भाषा में उर्दू का मिश्रण।
४) ऐतिहासिक नाटकों का आरम्भ।

द्वितीय उत्थान काल :— इस काल में कतिपय अनूदित नाटक मिलते हैं जैसे राधाकृष्ण का 'महाराणा प्रताप' रायदेवी प्रसाद का 'चन्द्रकला भानुकुमार' आदि। प्रयाग तथा काशी नाटक मंडलियों के निमित कुछ मौलिक नाटक अवश्य लिखे गये पर वे सब दोषपूर्ण थे। इतना सब कुछ होने पर भी 'माधव-शुक्ल' और 'दुगवेकर जी, ने अपने अभिनय द्वारा नाटक की परम्परा को बनाये रखा।

इस काल में बंगला से अनूदित अनेक नाटक 'वीर-नारी, 'पद्मावती, 'वनवीर, विद्या-विनोद, चित्रांगदा, पतिव्रता, 'उसपार, 'दुर्गादास, शाहजहां लिखे गये। अंग्रेजी तथा संस्कृत के अनेक नाटकों का भी अनुवाद किया गया जिन में गोपीनाथ द्वारा 'रोमियो जूलियट, 'वैनिस का सौदागर' 'मैकबथ, तथा हेमलट, आदि उल्लेखनीय हैं। साथ ही साथ सीताराम ने मेघदूत, 'नागानन्द, 'महावीर चरित, आदि नाटकों का अनुवाद किया।

इसी प्रकार सत्यनारायण जी ने 'रामचरित, तथा 'मालती माधव अनुवाद किया।

इस काल में किशोरी लाल द्वारा 'चोपट-चपेट, उपाध्याय प्राण रूकमणि परिणय' ज्वाला प्रसाद मिश्र द्वारा 'सीता-वनवास' आदि कतिपय मौलिक नाटक भी लिखे गये।

तृतीय - उत्थान - काल :— इस काल में हिन्दी नाटकों पर विपुल मात्रा में पाश्चात्य प्रभाव पड़ा। इस युग के नाटक प्रथम दो उत्थान कालों से बिल्कुल बदले हुए प्रतीत होते हैं। इस काल की निम्नस्थ विशेषतायें हैं :—

१) रस विधान तथा शील वैचित्र्य का सामंजस्य।
२) अभिनय की रोचकता।
३) ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकों की भरमार।

इस काल के प्रसिद्ध नाटककार जयशंकर प्रसाद, प्रेमी श्री गोविन्द दास, उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, चतुरसेन शास्त्री, सुमित्रानंदन पन्त आदि हैं, जिनके क्रमशः स्कन्द गुप्त, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, शिवसाधना, रक्षा बंधन, कर्तव्य प्रकाश, हर्ष, तक्षशिला, राका, मानसी, दाहर, मत्स्यगंधा उत्सर्ग, ज्योत्सना आदि नाटक प्रसिद्ध हैं। मौलिक नाटकों के अतिरिक्त इस काल में भी संस्कृत के कुछ नाटकों के अनुवाद किये गये। जर्मन कवि 'गेटे' के प्रसिद्ध नाटक 'फाइस्ट, का अच्छा अनुवाद भोलानाथ शर्मा ने किया।

चतुर्थ उत्थान काल :— इस काल में अनेक नाटककारों का उदय हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास में हुआ जैसे डा०

रामकुमार वर्मा, श्री जगदीशचन्द्र माथुर, सेठ गोविन्द दास, श्री उपेंद्र नाथ अश्क, श्री उदयशंकर भट्ट, श्री विष्णु प्रभाकर, श्री रामवृक्ष बेनपुरी, अमृतलाल नागर, नरेश मेहता, लक्ष्मी नारायण लाल, डा० धर्मवीर 'भारती, गिरजा कुमार माथुर, श्री मोहन राकेश आदि।

वर्तमान मानव कुँठाग्रस्त है, इन्हीं अदम्य कुंठाओं की झलक आधुनिक काल के नाट्य साहित्य में मिलती है।

वर्तमान काल में अनेक नाटकीय शैलियों का विकास हुआ। नाटक के अतिरिक्त एकांकी, रेड़ियो रूपक, रेड़ियो फैंटेसी, झलकियां, स्वगत नाट्य (मनोलॉग) आदि की झलक पाठकों को मिलती है।

प्रश्न ३ :— संक्षेप में 'कोणार्क, नाटक का कथासार लिखिए –

उत्तर :— श्री जगदीशचन्द्र माथुर लिखित कोणार्क, नाटक के श्री गणेश (उपक्रम) में ही बताया गया है कि 'उड़ीसा, में महाराज नरसिंहदेव का राज्य है। 'विशु' महाराज का महाशिल्पी है जिसने भुवनेश्नर में चार विराट मन्दिरों का निर्माण किया है फिर भी इस महाशिल्पी की कामना एव साधना पूर्ण न हुई और अब वह 'कोणार्क, के निर्माण-कार्य में रत है। उसकी कल्पना का साकार रूप समक्ष है। सूर्य भगवान की तेजस्वी मूर्ति चुम्बक पत्थर के आकर्षण से निराधार शून्य में लटकी हुई है परन्तु मन्दिर का शिखर पूरा होना शेष है। यह सब

सूचना 'सूत्रधार, तथा वाचिकाओं के द्वारा पाठकों को मिलती है।

'विशु' इसी चिन्ता में लगे हुए हैं कि अम्ल के ऊपर त्रिपटधर को किस प्रकार स्थापित किया जाये ? क्योंकि इसके अभाव में मूर्ति का प्रतिष्ठापन नहीं हो रहा।

विशु, राजीव तथा सौम्यश्री इसी समस्या को सुलझाने में लगे हैं उसी समय राजीव ज्योतिषियों की भावी सूचना से उनको अवगत कराता है कि "कोणार्क देवालय ज्यों ही पूरा होगा, इस के पत्थरों में पंख लग जायेंगे और सारा मन्दिर आकाश में उड़ जायेगा।"

सौम्यश्री राज्य की परिस्थितियों की ओर महाशिल्पी का ध्यान आकर्षित करते हुए कहता है कि महाराजा नरसिंह देव सीमा पर यवनों को पराजित करने में लगे हैं, इधर महामात्य चालुक्य के अत्याचारों से जनता त्राहि त्राहि कर रही है। इसके उत्तर में 'विशु' अपना तर्क प्रस्तुत करते हैं कि कलाकार को परिस्थिति - निरपेक्ष हो कार्य-रत रहना चाहिए।

बातों ही बातों में 'राजीव' उनको सूचित करता है कि एक सोलह वर्षीय युवक कलाकार जो महान प्रतिभा से दीप्त हो रहा है, महाशिल्पी से भेंट करने के लिए उत्सुक है। महाशिल्पी जब उस युवक 'धर्मपद' के गुणों से परिचित होता है तो अत्यन्त ही प्रसन्न हो जाता है। 'कला' की पृष्ठभूमि में कलाकार को राज्य की ओर से किस प्रकार अपमानित एवं प्रताड़ित किया जाता है, इसकी विस्तृत व्याख्या 'धर्मपद' प्रस्तुत करता है। महाशिल्पी 'विशु' फिर भी कलाकार की

'स्वान्तः सुखाय, मनोवृति की बातें करता है परन्तु युवक कलाकार बार बार यही कहता है कि महामात्य चालुक्य के अत्याचार पराकाष्टा पर पहुँच चुके हैं, जिसकी प्रतिक्रिया केवल विद्रोह है। इसी समय चालुक्य कोणार्क के निर्माण-स्थल पर सक्रोध आ जाता है और 'विशु' को चेतावनी देता है कि यदि 'कोणार्क' का कार्य दस दिन के अन्तर्गत पूर्ण न हुआ तो कलाकारों को अपंग कर दिया जायेगा। 'विशु' चिन्तित हो जाता है कि इस समस्या का क्या समाधान है? इस पर 'धर्मपद' कहता है कि मैं 'कोणार्क' का निर्माण करूँगा परन्तु एक 'शर्त' पर। वह यह कि उसे केवल एक दिन के लिए महाशिल्पी के अधिकार प्रदान किये जाये। 'विशु' इस बात को स्वीकार करता है। दूसरे ही दिन 'कोणार्क' का भव्य, गौरवशाली तथा गगनचुम्बी मन्दिर तैयार हो जाता है।

श्री नरसिंहदेव सीमा प्रान्त से यवनों पर विजय प्राप्त करने के पश्च.त 'कोणार्क के कलाकारों तथा महाशिल्पी 'विशु' की भूरि - भूरि प्रशंसा करता है, उस दिन का महाशिल्पी 'धर्मपद' सम्राट के समक्ष महामात्य चालुक्य के अत्याचारों की कथा रखता है और उसे चालुक्य को पदच्युत करने की प्रार्थना करता है। सम्राट विचारमग्न हो जाते हैं। इसी समय चालुक्य के संकेतों पर उसकी दंडपाशिक सेना श्री नरसिंहदेव के विरुद्ध विद्रोह की ध्वजा लिए आक्रमण के हेतु आ जाती है।

'कोणार्क' का मन्दिर रक्षा-दुर्ग सिद्ध होता है। सभी कलाकार युद्ध भूमि में उतर जाते हैं। विद्रोही 'धर्मपद' पूर्ण उत्साह के साथ युद्ध का संचालन करता है।

इसी समय हाथीदांत की मूर्ति का कंठहार देखकर महाशिल्पी 'विशु' पर यह रहस्य प्रकट हो जाता है कि 'धर्मपद' उस 'शवर-कन्या, का पुत्र है जिसकी मनोभूमि का सूर्य के प्रणय ने विभोर कर दिया था। 'धर्मपद' को भी पता चलता है कि वह 'विशु' का पुत्र है जिसका वास्तविक नाम 'श्रीधर है।

इस रहस्योद्‌घाटन के पश्चात 'विशु' अपने पुत्र को युद्ध-भूमि में जाने से रोकता है परन्तु 'वह' कर्तव्य मार्ग से विरत नहीं होता और कला तथा संस्कृति को रक्षा में प्राणों का उत्सर्ग करता है।

अन्त में 'विशु' चुम्बक हटा देता है, भगवान भास्कर अपने तेजस्वी रूप में मानो शंकर के 'तांड़व' का आह्वान करता है और 'कोणार्क' के स्तम्ब टूट पड़ते हैं, मन्दिर धराशायी होता है तथा अत्याचारी उसके नीचे दबकर रह जाते हैं।

—०—

प्रश्न ४:— 'कोणार्क' नाटक के प्रथम अंक का कथासार लिखिए।

उत्तर :—'कोणार्क' नाटक का प्रारम्भ उस भूमिका के साथ होता है जिस में इस महापीठ की साज सज्जा का वर्णन किया गया है।

इसके साथ ही साथ कहा गया है कि इस महामन्दिर की कल्पना का साकार चित्र 'विशु' के मस्तिष्क में है और वे

इस चिन्ता में भावमग्न हैं कि अम्ल के ऊपर किस प्रक
त्रिपटधर को स्थापित किया जाये इसी समय 'राजीव' ज्योतिषि
की इस भविष्यवाणी से उनको सूचित करते हैं कि 'कोणा
की भव्य अट्टालिका का निर्माण होने के पश्चात वह धराशा
होगी।

इसी संदर्भ में सौम्यश्री के द्वारा 'विशु' तथा 'राजं
को सूचना मिलती है कि महामात्य चालुक्य का व्यवह
सामान्य जनता तथा कलाकारों के प्रति असहिष्णु एव अन्य
पूर्ण है। उसके आतंक से जनता पीड़ित है। एक ओर से स
श्री नरसिंहदेव सीमाप्रान्त में यवनों का दमन करने के
में रत हैं तथा दूसरी ओर से चालुक्य अपनी ही जनता
नाना प्रकार के अत्याचार कर रहे हैं। 'विशु' इस उलझन
नहीं पड़ना चाहते हैं उनका तर्क है कि कलाकार की सा
व्यक्तिगत है, निजी है तथा अन्तर्मुखी है।

'राजीव' 'विशु' से कहते हैं कि एक १६ वर्षीय यु
कलाकार, जिसका नाम 'धर्मपद' है, आप से भेंट करने
हेतु उत्सुक है। उस की प्रतिभा अत्यन्त ही प्रखर, दिव्य
तेजस्वी प्रतीत होती है।

धर्मपद की प्रतिभा महाशिल्पी को प्रभावित करती
'कला तथा कलाकार के व्यक्तित्व' के विषय पर दोनं
वाद-विवाद होता है। 'धर्मपद' का कथन है कि कला
साधना तभी सार्थक हो सकती है जबकि कलाकार की समस
पर ध्यान दिया जाये। आज जबकि 'कलाकारों' को दमन
के नीचे कुचल दिया जाता है तो कलाकार की सा
किस प्रकार सफल हो सकती है?

इसी समय चालुक्य दल बल के साथ 'कोणार्क' के निर्माण स्थल पर प्रवेश करता है। वह 'महाशिल्पी' के प्रति सम्बोधित होकर कहता है कि आप लोग यहाँ बैठकर राज्य के प्रति महान कुचक्र की योजना बना रहे हैं। यहाँ मात्र वाग्जाल बुना जाता है तथा धन का व्यर्थ नाश होता है। यदि आप लोग दस दिनों के अन्तर्गत इस महापीठ के शिखर का 'निर्माण' न कर सके तो कलाकारों को अपंग कर दिया जायेगा।

'धर्मपद' 'विशु' की चिन्ता दूर करते हैं। वे कहते हैं कि 'कोणार्क' के कमल की पंखुड़ियां उल्टी हैं। उन्हें उलट देने पर कलश के ठहरने की संभावना है, परन्तु वे 'शर्त' रखते हैं कि वे इस कार्य में तभी प्राण संचार करेंगे जब उन्हें एक दिवस के लिए 'महाशिल्पी' का पद प्रदान किया जाये। 'विशु' वचन देते हैं कि वे ऐसा ही करेंगे।

द्वितीय अंक का कथासार

द्वितीय अंक का प्रारम्भ 'कोणार्क' के महामन्दिर में श्री नरसिंहदेव के स्वागत के साथ होता है। यवनों की विशाल वाहिनी को परास्त करने वाला सम्राट कलाकारों की कला दक्षता से अत्याधिक प्रभावित होता है तथा महाशिल्पी 'विशु' की कला-कुशलता की भूरि भूरि प्रशसा करते हुए पुरस्का[र] की घोषणा करता है परन्तु 'विशु' कहता है कि पुरस्का[र] का अधिकारी वस्तुतः युवक कलाकार 'धर्मपद' है। सम्रा[ट] विस्मित हो जाते हैं परन्तु जब उनको बताया जाता है कि इस सोलह वर्षीय कलाकार की प्रतिभा के कारण ही 'अम्ल

पर लिपट धर' की स्थापना संभव हो सकी तो वे अत्यन्त ही प्रसन्न हो उठे तथा उन्होंने यथेष्ट ढंग से 'धर्मपद, को सम्मानित किया।

इस अवसर का लाभ उठाते हुए धर्मपद चालुक्य के द्वारा श्रमजीवियों तथा कलाकारों को अपमानित, प्रताड़ित तथा पीड़ित करने को सम्पूर्ण कथा सम्राट श्री नरसिंहदेव के समक्ष रखते हैं। श्री नरसिंहदेव 'धर्मपद' को आश्वासन देते हैं कि वे पत्थरों का जीवन-दान देने वालों के जीवन-स्रोत को अजस्र देखना चाहते हैं तथा उनके प्रति परिपूर्ण न्याय किया जायेगा। इसी अंक में चालुक्य का दूत 'शैवालिक' सम्राट को एक पत्र देता है जिस में उनको चेतावनी दी गई थी कि वे महामात्य के सम्मुख आत्मसमर्पण की घोषणा करें परन्तु कलाकारों के उत्साहवर्धन आत्मगौरव की ज्योति से ज्योतित होकर एवं विशेष रूप से धर्मपद' का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने के उपरान्त श्री नरसिंहदेव चालुक्य का सामना करते हैं।

तृतीय अंक का कथासार

इस अंक में इस बात से पर्दा उठ जाता है कि 'धर्मपद' वास्तव में शबर-कन्या का पुत्र है, जिस के हृदयतल को भगवान भास्कर को किरणों ने छू लिया था और महाशिल्पी 'विशु' श्रीधर का ही परिवर्तित नाम है।

अनेक घटनायें घटित होती हैं, 'विशु' का पितृ-स्नेह जागृत होता है और वह 'धर्मपद' के कर्तव्य-पथ में बाधा का पत्थर बनना चाहता है परन्तु उत्साही कलाकार उस पत्थर को

हटाकर अपना मार्ग प्रशस्त करता है। वह अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है। 'विशु' चुम्बक तोड़ता है, जिसके परिणाम-स्वरूप 'देवमूर्ति' तथा शिखर गिर पड़ते हैं और 'कोणार्क का भव्य, सुन्दर तथा महान प्रसाद टूट पड़ता है। चालुक्य के सैनिक कपाट पर धक्का देते हैं परन्तु गर्भगृह में तीव्र प्रकाश के बीच निराधार सूर्य प्रतिमा स्वयमेव हिलने लगती है तथा 'कोणार्क' धराशायी होता है।

———

प्रश्न ५ :— नाटकीय तत्वों की सोदहारण व्याख्या कीजिए।

उत्तर :— नाटकीय तत्व कितने हैं और कौन कौन से हैं, इस सम्बन्ध में अनेत मतभेद हैं। कतिपय आलोचकों के मतानुसार नाटकीय तत्वों की कसौटी पर नाटकों की आलोचना नहीं हो सकती है क्योंकि 'वस्तुवाद' ने हिन्दी साहित्य को अत्याधिक प्रभावित किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में नयी कविता के आने के साथ साथ साहित्य के अन्य अंगों, यहाँ तक कि नाटकों की रचना भी नयी विशिष्ट टेकनीक के अनुसार होती है। इतना होते हुए भी मैं अनुभव करता हूं कि नाटकीय तत्वों का अपना महत्व है। नाटकीय तत्व निम्नलिखित हैं।

१) कथावस्तु या कथानक :— कथावस्तु अथवा कथानक का नाटक में वही महत्व है जो किसी प्रासाद के लिए 'प्लाट' का है। जिस प्रकार का 'प्लाट' होगा उसी प्रकार के भवन की रचना हो सकती है और यह बात भी स्मरणीय है कि

यदि 'प्लाट' ही न हो तो प्रसाद का निर्माण भी संभव नहीं क्योंकि वह वायु-तरंगों के ऊपर खड़ा नहीं हो सकता। अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि कथानक का वहीं महत्व है जो शरीर के कंकाल का। विधाता ने कदाचित कंकाल' की ही सृष्टि की होगी और बाद में उसमें मास-संचार किया होगा अथवा नयन, मुख, नासिका आदि का निर्माण किया होगा। उसी प्रकार पहले 'कथानक' का चित्र ही नाटककार के कल्पना-पट पर उभरता है उसके पश्चात ही वह अन्य अंगों की पूर्ति में लग जाता है।

एक सफल कथानक की निम्नलिखित अवस्थायें या विशेषतायें हैं :—

१) घटनाओं का तारतम्य।
२) कौतूहल
३) कुतूहल
४) आरोह
५) चरम - सीमा
६) अन्त

कहने का तात्पर्य यह है कि नाटक में घटनाओं का तारतम्य होना चाहिए। पाठकों को कदापि यह अनुभव न हो कि नाटककार कथानक के 'छकड़े' को धक्के दे देकर चला रहा है। उसके पश्चात नाटक में कोई घटना घटित होती है और पाठकों की जिज्ञासा जागृत होती है कि आगे क्या होगा? जैसे 'स्कन्दगुप्त' नाटक में परम भट्टारक के षड़यन्त्र के पश्चात पाठकों का हृदय-मंथन होता है कि अब क्या होगा? ये

कौतूहल तथा कुतूहल की अवस्थायें हैं। जब यह उत्सुकता और अधिक बढ़ती है तो वह 'आरोह' की अवस्था है। जिस समय पाठकों की उत्सुकता चरम सीमा पर पहुँचती है उस समय की अवस्था को 'चरम-सीमा' कहते हैं उसी के साथ नाटक का अन्त होना चाहिए।

२. चरित्र-चित्रण :— चरित्र चित्रण के आधार पर नाटककार की मौलिकता निर्भर है। वास्तव मे 'चरित्र चित्रण' ही नाटक का सर्वप्रधान और स्थायी तत्व है, क्योंकि दर्शक के ऊपर सब से अधिक प्रभाव और परिणाम इसी चरित्र चित्रण का पड़ता है। वस्तु विन्यास सुन्दर होने पर भी चरित्र चित्रण के अभाव के कारण उस नाटक को न तो साहित्य ही में और न 'रंगशाला' में ख्याति उपलब्ध हो सकती है। चरित्र चित्रण की विशेषता यह है कि नाटककार अल्प चित्रण में ही बहुत कुछ चित्रण कर सकने में समर्थ हो सके। चरित्र चित्रण की सब से बड़ी विशेषता यह है कि 'चित्रण' के समय नाटककार को पात्रों की आकृति, वाणी, विचारधारा, आत्म भाषण तथा व्यापार का ध्यान रखना चाहिए। यही 'नियम' एक समान नाटक अथवा एकांकी नाटक' पर लागू हो सकता है। उदाहरण के लिए ध्रुवस्वामिनी नाटक में 'रामगुप्त' को लीजिए उसकी वाणी, आकृति, विचार-धारा आदि से उसकी 'क्लीवता' स्पष्ट रूपेण लक्षित होती है।

३. कथोपकथन :— कथोपकथन नाटक का सब से महत्व-पूर्ण तत्व है। पात्रों के भावों, विचारों और प्रवृतियों आदि

के विकास और विरोध का बहुत कुछ पता हमें [illegible] से ही चलता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने वाले नाटकों में कथोपकथन का महत्व और भी बढ जाता है। चरित्र-चित्रण के विस्तार, पात्रों को विचाराभिव्यक्ति, प्रयाजन तथा मनोवेगों की उत्पति एवं वृद्धि के लिए कथोपकथन की गरिमा स्वीकार करनी पड़ती है। उपयोगी कथोपकथन कथावस्तु को गतिशील बना देता है। एकांकी नाटक में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है। कथोपकथन के द्वारा ही पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है जैसे :—'यह मेरा वाणी है। मुझे इस बन्दी ने दया का पात्र बना दिया है। मेरा हृदय जल रहा है। मुझे लगता है जैसे मैं अकेला हूं, जैसे मैं एक दुर्बल प्राणी हूँ।'' विष्णु प्रभाकर के 'अशोक' नाटक के इस 'संवाद' में 'कुमार' के चरित्र की विशेषता प्रकट हो जाती है।

४. भाषा तथा शैली :— प्रत्येक नाटककार की अपनी 'शैली होती है तथा उसी के अनुसार वह भाषा भी प्रयोग में लाता है। उदाहरण के लिए श्री जयशंकर प्रसाद के नाटकों की ओर ध्यान दीजिए उनकी शैली गूढ़, गहन तथा गम्भीर है इसी कारण उनको भाषा भी भावगर्भित तथा गम्भीर है। वे मूलतः कवि हैं, इस कारण उनके कवित्व की छाप उनके नाटकों पर भी पड़ी है। उनके 'संवाद' ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे कि कोई कविता हो रही हो।

वर्तमान युग में अनुभव किया जाता है कि नाटक की भाषा सरल, सरस तथा शैली स्वाभाविक होनी चाहिए।

५. देशकाल - विधान :— नाटक में देशकाल का महत्व उतना नहीं जितना कि उपन्यास में है। यह नाटक का एक गौण तत्व है। नाटक में देशकाल का विधान रंगमंच के प्रकार पर निर्भर है। स्थानीय विधान वाले रंगमंच में नाटककार को देशकाल विधान का कम अवसर मिलता है। निश्चल प्लेटफार्म वाले रंगमंच पर विधान की ओर केवल संकेत कर दिया जाता है। चित्र संस्थान रंगमंच पर तो यह सब चित्रों द्वारा पर्दे पर दिखा दिया जाता है प्राचीन यूनानी नाटककारों ने संकलनत्रय का सिद्धान्त बनाया था पर आधुनिक के लिए आवश्यक नहीं है।

६. रंगमंचीयता :— डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में "नाटक यदि प्राण है तो रंगमंच उसका शरीर है।" जो नाटक रंगमंच पर जितना सफलतापूर्वक खेला जाता है वह उतना ही सफल नाटक माना जाता है। हिन्दी के वर्तमान नाटकों में नाटककार रगमंच के लिए अपने सुझाव भी देता है जो मंच - निर्देशक के कार्य को सुगम बना देते हैं।

७. उद्देश्य :— नाटक जीवन का चित्रण है। अतः नाटक किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर लिखा जाता है। उद्देश्य पूर्ति के लिए नाटककार किसी पात्र विशेष का, किसी प्रकार की रंगमंचीय सृष्टि का,. अथवा अनेक पात्रों का निर्माण करता है।

नाटककार का उद्देश्य जीवन की व्याख्या अथवा आलोचना होना चाहिए। जीवन की व्याख्या के साथ साथ उसमें मनोरंजन की सामग्री का होना आवश्यक है।

———

चरित्र चित्रण :

'महाशिल्पी विशु का चरित्र चित्रण'

महाशिल्पी विशु 'कोणार्क' नाटक का महत्वपूर्ण पात्र हैं। नाटक में उसकी प्रमुख भूमिका है।

विशु का रहन-सहन साधारण :— कोणार्क के जिस कमरे में विशु निवास करते हैं वह अत्यन्त ही साधारण तथा नाटककार के शब्दों में अलंकार विहीन हैं चौकी पर एक सादा कालीन बिछा है।

विशु - एक महाशिल्पी : – नाटक के आदि से लेकर अन्त तक पाठकों के समक्ष यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि 'विशु' निस्संदेह एक महाशिल्पी है। उन्होंने उड़ीसा राज्य में तीन महामन्दिरों का निर्माण किया है तथा तीनों भारतीय कला के साकार भवन हैं। इसी कारण भगवान भास्कर के स्मृति-भवन 'कोणार्क' के निर्माण-कार्य का दायित्व भी उन्हें हो सौंपा गया है। 'कोणार्क' का निर्माण करते हुए इस महाशिल्पी ने पत्थरों में प्राण प्रतिष्टा की है। उन्हें गति दी है। यहाँ तक कि यह मन्दिर धरती से ऊपर की वस्तु बनकर रह गया है। 'पत्थर का यह मन्दिर आज कल्पना के स्पर्श से हवा की तरह गतिमान, किरण की तरह स्पर्शहीन, सुगन्ध की तरह सर्वव्यापी हो रहा है।'

कला और मात्र कला की साधना—उसका जीवन-लक्ष्य :— महाशिल्पी विशु 'कला' का एक मात्र आराधक है। कला का

आंचल ग्रहण करते हुए वह इसके अतिरिक्त और किसी ऋद्धि सिद्धि का इच्छुक नहीं है। कला ही उसकी साधना और साध्य दोनों हैं। कला के कल्पवृक्ष के नीचे वह शान्ति, सन्तोष तथा आत्मा के आनन्द का अनुभव करते हुए आत्म-चिन्तन में लीन हो जाता है। वह इस पक्ष में कदापि नहीं है कि शिल्पी को विद्रोही होना चाहिए। उसका निजी विचार है कि विद्रोह का जगत कला के संसार से सर्वथा भिन्न है। उसके विचार में कला की साधना जीवन की मौन आराधना है।

टूटी हुई रागिनी का विशाद चमत्कारपूर्ण कला का वैभव :– महाशिल्पी 'विशु' का जीवन ऊपर से जितना शान्त तथा चमत्कारपूर्ण प्रतीत होता है उसके अन्तर में उतनी ही टीस, पीड़ा तथा अशान्ति का उमड़ता हुआ सागर हिलौरें मारता हुआ प्रतीत होता है। उसके जीवन तथा कला की साधना के पीछे एक करुणा भरी कहानी है, जीवन की टूटी हुई रागिनी जो आगे चलकर उसकी चमत्कारपूर्ण कला का वैभव सिद्ध हुई। कहानी इस प्रकार है :—"सत्रह वर्ष पूर्व सारिका नाम की शबर-कन्या, विशु के नगर में हाट के दिन अपने ग्रामीण जनों के साथ जगली छाल, जड़ियां बेचने आती और नगर की ऊँची अटारी का बासी सूर्य उस वन-कलिका पर मुग्ध हो गया। जिस समय विशु को पता चला कि वह माँ बनने वाली है तो कुल और कुटम्ब के भय ने उसे ग्रस लिया और वह भाग गया और 'कोणार्क' की इस छाया में उसकी चमत्कारपूर्ण कला का वैभव निखर पड़ा। सब से

बड़ी विड़म्बना यह है कि सत्रह वर्षों तक महाशिल्पी 'विशु' ने अपने मन में रहस्य की इस कथा को छिपा लिया और यह कहानी उसकी अनवरत साधना का अंग बन गई।

विशु की राज्य भक्ति :— अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों में 'विशु' की राज्य भक्ति में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता। वह हर समय सम्राट श्री नरसिंहदेव के न्याय पर अविश्वास नहीं करता। जिस समय धर्मपद, राजीव आदि राज्य में हो रहे अत्याचारों की गाथा उसे सुनाते हैं, उस समय उसका मन नहीं मानता कि श्री नरसिंहदेव इसके लिए दोषी होंगे और अन्त में यह बात सत्य प्रमाणित होती है, चालुक्य के अत्याचारो की निर्माण कथा से श्री नरसिंहदेव सर्वथा अपरिचित होते हैं, जब वे वस्तुस्थिति से परिचित हो जाते हैं तो उन्हें आश्चर्य होता है। जिस समय चालुक्य 'विशु' से कहते हैं कि यह श्री नरसिंहदेव की आज्ञा है कि कलाकारों को अपंग बना दिया जाये उस समय भी महाशिल्पी 'विशु' की राज्यभक्ति में कोई अन्तर नहीं आता और उसे विश्वास नहीं होता कि ऐसा हो सकता है।

विशु के चरित्र की दुर्बलता :— 'विशु' के चरित्र के अनेक अच्छे पहलू हैं परन्तु यदि आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाये तो उनके चरित्र में कुछ दुर्बलतायें भी पाठकों अथवा दर्शकों को दिखाई देती है। विशु अत्याधिक सहनशील व्यक्ति है परन्तु उस समय उसकी सहनशीलता अथवा उदारता न जाने कहाँ चली जाती है जिस समय वह शबर-कन्या को

छोड़कर भाग जाता है क्योंकि कला की साधना पलायन में नही जीवन-संघर्ष में है। दूसरी दुर्बलता नाटक के उस स्थल पर परिलक्षित होतो है जहाँ अकेले अपने पुत्र धर्मपद के प्रति उसके हृदय में ममता की भावना जागृत हाता है। ऐसे भावावेश में बहने के स्थान पर इतना अवश्य सोचना चाहिए था कि जो लोग मृत्यु की कगार पर खड़े हैं वे भी तो उसके अपने ही चिर सम्बन्धी है।

इन सब दुर्बलताओं के होते हुए भी 'विशु' का चरित्र अत्यन्त ही यशस्वी है तथा उनकी भूमिक कोणार्क नाटक की महत्वपूर्ण भूमिका है।

———

धर्मपद का चरित्र चित्रण

यद्यपि महाशिल्पी विशु, राजीव तथा सौम्यश्री के पश्चात ही 'धर्मपद' का आविर्भाव 'कोणार्क' नाटक में होता है तथापि उसको भूमिका नाटक की महत्वपूर्ण भूमिका है।

प्रथम अंक में ही पाठकों अथवा दर्शकों को पता लगता है कि वह एक किशोर शिल्पी है जिसकी आयु लगभग १६ वर्ष की है तथा इस छोटी आयु में ही जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि उसके कार्य कलापों से प्रकट होती है। सौम्यश्री के शब्दों में 'वह प्रतिभावान किशोर है।'

धर्मपद एक विद्रोही युवक :— धर्मपद एक विद्रोही युवक है। उसके विद्रोही स्वरूप की झलक प्रस्तुत नाटक में कई

स्थलों पर मिलती है। वह इस बात के पक्ष में कदापि नहीं है कि कलाकार को अन्तर्मुखी साधना में लीन रहना चाहिए तथा प्रकृत जगत की गतिविधियों एवं हलचल से सर्वथा अलग रहना चाहिए। वह अपने इस विद्रोही स्वरूप की व्याख्या करते हुए 'विशु' से स्पष्टतय: कहता है— "यह उचित नहीं है कि जब चारों ओर अत्याचार और अकाल की लपटें बढ रही हों, शिल्पी एक शीतल और सुरक्षित कोने मे यौवन और विलास की मूर्तियां ही बनाता रहे।"

कोणार्क का वास्तविक शिल्पी :—

यूँ तो 'विशु' 'महाशिल्पी' है तथा श्रीनरसिंहदेव ने उसी के ऊपर 'कोणार्क' के निर्माण-कार्य का उत्तरदायित्व रखा है। परन्तु 'कोणार्क' की कल्पना इतनी ऊँची हो उठती है कि 'विशु' उसको करने में सफल नहीं हो पाता। यह 'धर्मपद' की ही महा-प्रतिभा थी जिसके बल पर इस 'महामन्दिर' के शिखर का निर्माण हो जाता है। वह प्रत्येक पटल को इस प्रकार रखता है कि जो बाहिरी भाग है वह अन्दर केंद्र पर स्थित होता है और जो नुकीला भाग है वह बाहिर निकलता है और उसकी आकृति खिले कमल की सी हो जाती है। इस प्रकार कलश स्थिर रहता है। अत: यह कहना उचित होगा कि वह एक कुशल शिल्पी है।

धर्मपद-एक निर्भीक सत्यवक्ता :—एक कुशल तथा प्रतिभावान शिल्पी होने के साथ साथ वह एक सत्यवक्ता है। शिखर के पूर्ण होने की योजना में लगे रहने से पूर्व वह एक दिन के लिए, मन्दिर प्रतिष्ठापन के दिन विशु के महाशिल्पी विषयक

सभी अधिकार उन से मांगता है और श्रीनरसिंह देव के समक्ष कलाकारों एवं श्रमिकों की दुखद गाथा प्रस्तुत करता है। वह गाथा इतनी मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी होती है कि उसको सुनकर सम्राट श्रीनरसिंहदेव भी द्रवित हो उठते हैं तथा 'धर्मपद' को विश्वास दिलाते हैं कि कलाकारों के साथ पूरा पूरा न्याय होगा।

अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन के सूत्रधार :—श्रीनरसिंहदेव की अनुपस्थिति का अनुचित लाभ उठाते हुए 'चालुक्य' जनता को शोषण के दमनचक्र के नीचे कुचल देता है। धर्मपद का विद्रोही मन इस बात को सहन नहीं करता है और 'चालुक्य' के अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन का जो सूत्रपात होता है उसका वास्तविक सूत्रधार 'धर्मपद' ही सिद्ध होता है। वह सब कलाकारों के उत्साह की ज्योति को प्रज्वलित करता है, उन्हें एकत्र करता है तथा उसके सद्-प्रयत्नों से 'कोणार्क' का महामन्दिर युद्ध का दुर्ग बन जाता है। वह युद्ध में लड़ने का कार्य ही नहीं करता प्रत्युत घायलों की सेवा-शुश्रूषा आदि भी करता है। इतना ही नहीं. वह एक जागरूक प्रहरी की भान्ति प्रचारों पर निगाह रखता है।

धर्मपद वास्तव में कौन :— नाटक के अन्त में इस बात का रहस्योदघाटन भी होता है कि 'धर्मपद' वास्तव में शबर-कन्या का पुत्र है तथा उसके पिता महाशिल्पी विशु है जिसका वास्तविक नाम 'श्रीधर' था।

कर्तव्यपरायण शिल्पी :— धर्मपद एक कर्तव्यपरायण शिल्पी है। कला की साधना के साथ साथ वह कलाकारों के अधिकारों का रक्षक भी हैं। जिस समय 'विशु' को ज्ञात होता है कि धर्मपद'

मेरा पुत्र है, वह उसको युद्ध में जाने से रोकता है, पर 'धर्मपद, नहीं मानता। उसका कहना है कि कर्तव्य सर्वोपरि है। वह भावना और कर्तव्य के संघर्ष में कर्तव्य को ही महत्व प्रदान करता है। यहाँ तक कि कर्तव्य की वेदी पर वह अपने जीवन की भेंट चढाता है।

अतः यह कहना उचित होगा कि 'धर्मपद' का चरित्र एक कर्तव्य-परायण युवक का चरित्र है जो पाठकों के लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत है।
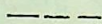
श्री नरसिंहदेव का चरित्र चित्रण

'धर्मपद' तथा 'महाशिल्पी विशु' के पश्चात जिस पात्र की महत्वपूर्ण भूमिका 'कोणार्क' नाटक में है, वह श्री नरसिंह-देव है।

श्री नरसिंहदेव के चरित्र की अनेक विशेषतायें पाठकों के समक्ष आ जाती हैं। सम्राट के कर्तव्य तथा देश की राजिनैतिक चेतना के प्रति अत्यन्त ही जागरूक तथा सावधान है। अब बंग-प्रदेश में यवनों का आतंक बढ जाता है तो श्रीनरसिंहदेव परिपूर्ण शक्ति तथा महान उत्साह के साथ उनका सामना करते हैं तथा उन्हें कई बार पराजित करते हैं। नाटक के प्रथम अंक में सम्राट श्री नरसिंहदेव के विषय में जो कुछ भी कहा गया है वह अन्य पात्रों के संवादों में ही कहा गया है। वास्तव में वे स्वयं द्वितीय अंक में प्रकट हो जाते हैं।

यदि श्री नरसिंहदेव को 'सैनिक नरेश' की उपाधि से अलंकृत किया जाये तो अधिक उपयुक्त एवं समीचीन होगा।

'सैनिक नरेश' होने के साथ साथ वे कला-प्रेमी हैं। उन की प्रेरणा तथा आदेश से महाशिल्पी 'विशु' तीन मन्दिरों का निर्माण करते हैं तथा 'कोणार्क' के निर्माण-कार्य में लग जाते हैं। जिस समय वे बंग-देश से यवनों को पराजित करके आते हैं और अपनो खुली आंखों से कोणार्क को देखते हैं तो उस समय कलाकार की विभूति को तैयार देखकर विभोर हो जाते हैं मानों इस छवि-सागर में डूब जाते हैं। वे 'कोणार्क' को देखकर मानो आत्मविभोर होकर कहते हैं:— "कोणार्क को निकट से देखने पर प्रतीत होता है, मानो तुमने (विशु ने) किसी जौहरी के गढे अलंकारों को पाषाण बना दिया हो और दूर से इस विमान और जगमोहन के शिखर हिमालय की चोटियों की स्पर्द्धा करते जान पड़ते हैं।"

वे कलाप्रेमी होने के साथ साथ जनत-जनार्दन का हित चाहने वाले न्यायप्रिय सम्राट हैं। देशसेवा उनकी साधना तथा न्यायप्रियता उनका साध्य है। न्याय में उनका अटल विश्वास है जिस समय धर्मपद के द्वारा उनको इस बात की सूचना मिलती है कि महामात्य चालुक्य के द्वारा कलाकारों एवं श्रमजीवियों का शोषण होता है उसी समय वे उनके प्रति होने वाले अन्याय को समाप्त करना चाहते हैं तथा उनके प्रति पूर्ण न्याय की घोषणा करते हैं। वे 'धर्मपद' से स्पष्ट कहते हैं:— "जान पड़ता है कि बंग-देश में हमारी लम्बी

अनुपस्थिति के दिनों में महामात्य चालुक्य बिना सोचे समझे शिल्पियों से विरक्त हो गये। हम उनका भ्रम दूर करेंगे। राजधानी लौटने पर शिल्पियों के कुटम्बियों को उनकी ज़मीन लौटाने की आज्ञा दी जायेगी।" इस सवाद से स्पष्ट हो जाता है कि वे न्यायप्रिय सम्राट हैं।

वे अदम्य उत्साह के व्यक्ति तथा स्वाभिमान प्रिय सम्राट हैं। जिस समय चालुक्य के द्वारा उनको पत्र दिया जाता है कि वे आत्मसमर्पण करें परन्तु आत्मसमर्पण की अपेक्षा वे मृत्यु का अधिक श्रेयस्कर समझते हैं तथा अन्तिम सांस तक सघर्ष करते रहते हैं।

सम्राट श्री नरसिंहदेव के चरित्र में केवल एक दुर्बलता पाठकों को मिलती है कि वे सहज-विश्वासी है। जबतक विद्रोह की विपत्ति उनके चरणों का स्पर्श करने को आ जाती है तबतक वे महामात्य चालुक्य के नाम की माला जपते हैं और दुहाई देते हैं कि चालुक्य हमारे विश्वस्त महामात्य हैं।

अन्त में यह कहना उचित तथा समीचीन होगा कि सम्राट श्री नरसिंहदेव का चरित्र अपने ढंग का एक विशिष्ट चरित्र है।

चालुक्य का चरित्र चित्रण

चालुक्य नाटक का प्रतिनायक है। वह एक पुष्टकाय मानव है, जिसकी आयु लगभग ४५ वर्ष की है। वह अत्यन्त

ही क्रूर प्रकृति का व्यक्ति है। बड़ी बड़ी मूछें मानो उसकी क्रूरता का परिचय देती हैं। उसके नेत्र छोटे हैं और बातें करते समय संकुचित लगते हैं। बातचीत करते समय उसकी भौहें सिकुड़ जाती है। उसकी वेशभूषा भी विचित्र है। पुराने ढग से बाधी हुई धोती, रेशमी उत्तरीय, सुवर्ण पर मस्तक पर, बाज़ू पर एक बाज़ूबद, कमर में कटार, यह उसकी वेशभूषा है। चालुक्य सुयोग्य महामात्य है। वह अपनी योग्यता से सम्राट श्री नरसिहदेव के मन को मोहित करने में समर्थ होता है। यहाँ तक कि सम्राट उसको अपना विश्वासपात्र मन्त्री समझ बैठते हैं।

परन्तु वाह रे मानव का स्वभाव ! चालुक्य सदा विश्वास का उत्तर अविश्वास से देता है। जितना ही सम्राट उसके प्रति विश्वास करते हैं उतना ही चालुक्य अविश्वास करता है। वह सम्राट के विरुद्ध कुचक्र रचता है तथा देश की दंड़पाशिक सेना को सम्राट के विरुद्ध भड़काता है। सम्राट को उस समय पता चलता है जब विद्रोही दंड़पाशिक सेना 'कोणार्क' मन्दिर को घेर लेती है और सम्राट को पत्र दिया जाता है कि वे मौन होकर आत्मसमर्पण करें।

यह क्रूर प्रतिनायक अत्यन्त ही स्वार्थी व्यक्ति है। अपनी स्वार्थ-साधना के अतिरिक्त उसे किसी पदार्थ अथवा प्रकृति के तत्व के साथ प्रेम अथवा आसक्ति नहीं। जीवन की रस-मयता का स्रोत कहाँ है ? मानव सौंदर्य की क्या परिभाषा है ? इन सब बातों से यह स्वार्थी मानव, एकदम अपरिचित है। वह 'कला' का प्रेमी नहीं प्रत्युत कलाकारों के विरुद्ध

है। उसने अनेक कलाकारों तथा शिल्पियों के अंगूठे काट लिये। उन्हें अपंग बना दिया। यदि श्री नरसिंहदेव तक वस्तुस्थिति की सूचना न मिलती तो यह क्रूर मनुष्य 'कोणार्क' के कलाकारों को भी अपंग बना देता। ऐसे व्यक्ति को यदि सौंदर्य, संस्कृति कला तथा मानवता का शत्रु कहा जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

इतना ही नहीं वह सामान्य जनता का शत्रु भी है। जो मज़दूर अपने रक्त-स्वेद से धरती का सिंचन-पोषण करते हैं चालुक्य उनके प्रति भी असहिष्णु है तथा उनके साथ अन्याय करता है। समय असमय उन बेचारों को अपमानित तथा पीड़ित किया जाता है।

नाटक के अन्त में इस दम्भी क्रूर मनुष्य की वही दशा होती है जो इतिहास में विश्वासघातियों तथा अत्याचारी मनुष्यों की हुई है। 'कोणार्क' का दिव्य मन्दिर स्वयं ही धराशायी हो जाता है तथा उसके नीचे क्रूर पापी तथा विश्वासघाती चालुक्य दबकर रह जाता है।

प्रश्न :— आपके विचारानुसार 'कोणार्क' नाटक का नायक कौन है, महाशिल्पी विशु अथवा 'धर्मपद' दोनों के चरित्रों की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए।

उत्तर :— सब से पहले विद्यार्थियों को यह बात बताने की आवश्यकता है कि आजकल हिन्दी साहित्य के इतिहास

में नये ढंग के नाटक लिखे जाते हैं जिनमें यह नहीं देखा जाता कि नाटक का 'नायक' अथवा उपनायक कौन है? आजकल 'नायकविहीन' नाटक भी लिखे जाते हैं।

फिर भी जो नाटक जिस कोटि के हो उस की समीक्षा का आधार उसी प्रकार का होता है। 'कोणार्क' नाटक का नायक कौन है? इस बात का ध्यान रखने से पूर्व यह जानना अत्यावश्यक है कि नायक कौन हो सकता है? उसमें क्या क्या विशेषतायें होनी चाहिए? कहा जाता है कि नायक नाटक के आदि से लेकर अन्त तक रहता है? वह उच्चकुल का प्रतिष्ठित व्यक्ति होना चाहिए। नायक धीरोधत, धीरललित, आदि अनेक प्रकार का होता है। नाटक के मुख्य रस का वह उत्तराधिकारी होता है। यह नायक की शास्त्रीय कसौटी है। यदि इस कसौटी को दृष्टि में रखा जाये तो महाशिल्पी 'विशु' ही नाटक का नायक है, परन्तु वर्तमान युग में जो नवीनतम आलोचना प्रकाश में आई है उसको दृष्टि में रखते हुए कहा जा सकता है कि अब शास्त्रीय कसौटी के आधार पर न तो नाटकों की समीक्षा हो संभव है और न इस कसौटी पर 'नायक' अथवा 'नायिका' का निधारण हो सकता है।

आजकल 'नायक' की पदवी उस पात्र को दी जाती है जिस पर नाटक का सम्पूर्ण घटनाचक्र आधारित हो। इस परिभाषा को यदि दृष्टि में रखा जाये तो 'धर्मपद' ही नाटक का नायक हो सकता है। नाटक का सम्पूर्ण घटनाचक्र उसी पर आधारित है तथा वह ही नाटक के कथानक में नवजीवन का संचार करता है। कथानक की गति, घटनाचक्र की स्फूर्ति,

एवं चरित्र चित्रण का केन्द्र सब कुछ उसी के साथ जुड़ा हुआ है।

धर्मपद तथा विशु के चरित्र की तुलनात्मक समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि 'विशु' जहाँ सहनशील प्रकृति का व्यक्ति है वहाँ 'धर्मपद, अत्यन्त ही विद्रोही मनोवृत्ति का है। जब वह विशु' से एक दिन के लिए महामात्य के अधिकार प्राप्त करता है तो वह श्री नरसिंहदेव के सामने चालुक्य के अत्याचार की सारी गाथा रखता है विशु उसे रोकना चाहता है परन्तु वह रुकता नहीं प्रत्युत निर्भीक होकर सम्राट से चालुक्य विषयक सब बातें कह देता है।

महाशिल्पी विशु का जीवन राज्यभक्ति की भावना से ओत प्रोत है, इसके विपरीत 'धर्मपद् राज्य की वर्तमान व्यवस्था के एकदम विरुद्ध है, विद्रोही है तथा उसे बदल डालना चाहता है।

'कला तथा कलाकार, विषय पर भी 'विशु' एव 'धर्मपद' के विचार भिन्न भिन्न हैं। विशु के विचारानुसार कला का परम लक्ष्य 'स्वान्तः सुखाय, का दृष्टिकोण है जबकि 'धर्मपद' अनुभव करता है कि यदि कलाकार को पीड़ित एवं अपमनित किया जाता है तो 'कला' की साधना निरर्थक सिद्ध होती है। कलाकार का व्यापक क्षेत्र विस्तृत जन समाज है जिसका स्पंदन उसकी साधना का महत्वपूर्ण अंग है।

'विशु' में पलायन की वृति है। वह समाज की विपतियों का सामान नहीं करता प्रत्युत 'शबर-कन्या, और नवजात-

शिशु' को एकान्त में छोडकर पलायन के पथ पर अग्रसर होता है इस के विपरीत 'धर्मपद' कठिनाइयों का सामना ही नहीं करता बल्कि पग पग पर उनको चिनौती देता है।

जीवन के एक स्तर पर 'विशु' ममत्व की दुर्बलता से ग्रस्त हो जाता है तथा अपने पुत्र 'धर्मपद' को युद्ध भूमि में जाने से रोकता है। वह एक शिल्पी था, कलाकार था उसे व्यष्टि में समष्टि का प्रतिबिम्ब देखना चाहिए था, जो अन्य कलाकार मर रहे थे, वे भी तो उसके अपने हो थे। इसके विपरीत धर्मपद ममता की इस शृंखला में नहीं जकड़ता तथा पावन धरती की रक्षा के हेतु अपने जीवन की भेंट चढ़ा देता है।

प्रश्न :— नाटकीय तत्वों के आधार पर 'कोणार्क' नाटक की समीक्षा कीजिए।

उत्तर :—'कोणार्क' नाटक के नाटककार श्री जगदीशचंद्र माथुर हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध सुपरिचित नाटककार हैं। 'कोणार्क' एक उच्चकोटि का ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें अनेक स्थलों पर कल्पना का प्रयोग किया गया है तथा यह नाटक इतिहास तथा कल्पना का गंगा-यमुना सामंजस्य है। उसमें 'महामात्य विशु, तथा 'धर्मपद' के जीवन के साथ ही साथ ऐतिहासिक आधार को लेकर तत्कालीन अनेक तथ्यों का उन्मीलन तथा प्राचीन भारतीय शिल्प कला एवं संस्कृति का दिग्दर्शन है।

कथानक :— 'कोणार्क' नाटक का कथानक प्राचीन जीवन, कला तथा संस्कृति की कथा को लेकर चला है। उसके पात्र

अधिकतर मध्यवर्ग के हैं। कथानक का अभिनय सुगमतयः दो घण्टे के अन्तर्गत हो सकता है। कथानक अभिनय की दृष्टि से सफल है। नाटक के कथानक का 'केन्द्रबिन्दु' 'कोणार्क' महामन्दिर का निर्माण स्थल है।

उड़ीसा में नरसिंहदेव का राज्य है। उनकी प्रेरणा से अबतक महाशिल्पी विशु ने तीन भव्य मन्दिरों का निर्माण किया है। चौथा महामन्दिर भगवान भास्कर का स्मृतिपीठ 'कोणार्क' का महामन्दिर है जिसके शिखर को वे पूर्ण नहीं कर पाते। बाद में 'धर्मपद' की सहायता से अम्ल पर विपटधर की स्थापना की जाती है और इस प्रकार मन्दिर पूर्ण होता है। धर्मपद अवसर पाकर श्री नरसिंहदेव को महामात्य चालुक्य द्वारा जनता पर अत्याचार की सम्पूर्ण कथा कहते हैं, उसी समय चालुक्य विद्रोह की ध्वजा लिए इस महापीठ पर आक्रमण कर देता है। सभी कलाकार विश्वासप्रिय राजा की सहायता करते हुए आक्रमण का सामना करते हैं। कहानी के इस मोड़ पर 'विशु' को पता चलता है कि 'धर्मपद' मेरा पुत्र है वह उसे युद्ध में जाने से रोकता है परन्तु कर्तव्यशील युवक हसते हुए अपने प्राणों की बलि चढाता है। अन्त में भगवान भास्कर का तेजस्वी स्वरूप प्रकट होता है 'चुम्बक' हिल उठता है तथा 'कोणार्क' का भव्य मन्दिर धराशायी होता है।

यह है नाटक के कथानक का संक्षिप्त परिचय। यह एक प्रकार से दुखान्त नाटक है क्योंकि नाटक के अन्त में धर्मपद, विशु तथा अन्य कलाकारों की मृत्यु होती है। इस में पुराने

नाटकों की भान्ति 'आधिकारिक, तथा 'प्रासंगिक' कथा नहीं, नाटक की एक ही मुख्य कथा है जो 'कोणार्क' महामन्दिर के इर्द गिर्द घूमती है। इस नाटक के कथानक में अपने द्वारा स्वीकृत आधार की पुष्टि के निमित्त नाटककार ने भारतीय कला, शिल्प तथा संस्कृति का वर्णन करते हुए महान सफलता प्राप्त की है।

चरित्र चित्रण :—

श्री जगदीशचंद्र माथुर चरित्र-चित्रण में बड़े ही निपुण हैं। उनके चरित्र हृदय पर दीर्घकालीन प्रभाव अंकित करते हैं। 'कोणार्क' नाटक के मुख्य पात्र 'धर्मपद, 'विशु' श्री नरसिंह-देव' 'चालुक्य' आदि हैं। किसी भी पात्र का कार्य पाठकों को अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। नाटककार ने जान मानकर मनोरंजन कराने के लिए किसी को पापी और किसी को पुण्यात्मा नहीं बनाया है। उसने उनको अपनी स्वाभाविक गति से चलने दिया है। श्री माथुर के पात्र स्वाभाविक होने के साथ साथ सजीव भी हैं। नाटक का नायक धर्मपद एक सजीव पात्र है। उसके चरित्र में विद्रोह, वीरता तथा कार्य-कुशलता की भावना परिपूर्ण वेग के साथ विद्यमान है। वह कोणार्क का वास्तविक शिल्पी है क्योंकि उसके ही प्रयत्नों से अम्ल पर त्रिरटधर की स्थापना संभव हो पाती है। प्रति-भावान शिल्पी होने के साथ साथ वह एक निर्भीक सत्यवक्ता है। वह अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन का सूत्रधार है। वह एक कर्तव्यपरायण शिल्पी है। भावना तथा कर्तव्य के संघर्ष में वह कर्तव्य को ही महत्व देता है।

'विशु' का चरित्र भी नाटक का एक महत्वपूर्ण चरित्र है। वह एक महाशिल्पी है। कला की साधना उसका जीवन-लक्ष्य है। उसका जीवन राज्यभक्ति की भावना से ओत-प्रोत है। वह अत्याधिक सहनशील व्यक्ति है तथा एक स्थल पर पुत्र-प्रेम की ममता रूपी दुर्बलता से ग्रस्त होकर वह अपने कर्तव्य को क्षणभर के लिए मानो भूल जाता है। श्री नरसिंहदेव एक जागरूक सम्राट है। नाटककार ने उसे सैनिक नरेश की उपाधि से अलंकृत किया है। उसका सम्पूर्ण जोवन बग-देश में यवनों का सामना करते हुए व्यतीत हाता है। वह एक न्यायप्रिय सम्राट है जो कलाकारों के अधिकारों की सुरक्षा के हेतु अपने प्राणों की भेंट चढ़ा देता है।

चालुक्य नाटक का प्रतिनायक है। वह एक स्वार्थी, क्रूर, कृतघ्न तथा मानवता के सिद्धान्तों को चिनौती देने वाल पापी पामर व्यत्ति है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पात्रों का चरित्र चित्रण सुन्दर बन पड़ा है।

कथोपकथन :—रोचकता कथोपकथन की सब से बड़ी विशेषता है। वही नाटक का प्राण तत्व है। श्री माथुर के नाटकों, विशेषकर 'कोणार्क' के कथोपकथन सरल, सरस, स्वाभाविक तथा व्यावहारिक हैं। वे एक दूसरे के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। उदाहरणार्थ :—

"महाराज श्री नरसिंह देव की क्रोधाग्नि? उसे तो करुणा की फुहारें क्षणभर में शान्त कर देती हैं" 'महाशिल्पी विशु'

के इस 'संवाद' में श्री नरसिंह देव के चरित्र की एक झलक पाठकों को मिलती है। इतना ही नहीं निम्नस्थ संवाद में चालुक्य के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है :—

"तात दूर दूर से आने वाले शिल्पी महामात्य द्वारा किये गये अत्याचारों के समाचार लाते हैं। उन में से कितने ही के कुटम्बों पर महामात्य के अन्याय का हथौड़ा पड़ चुका है। दिन प्रतिदिन तरह तरह की अशंकाजनक खबरें आती हैं।" यह सवाद राजीव का है। प्रस्तुत नाटक में नियत श्राव्य तथा अश्राव्य संवादों को स्थान नहीं मिला है। उसमें श्री जयशंकर प्रसाद के नाटकों की भान्ति दार्शनिक कथनों, अलंकृत भाषा और लम्बे भाषणों के दोष नहीं आने पाये हैं।

भाषा-शैली :—श्री सुमित्रानंदन पन्त के शब्दों में "कोणार्क नाटक में प्राचीन तथा नवीन नाट्यकला का अत्यन्त मनोरम सामंजस्य है।" यह कथन बिल्कुल सत्य है क्योंकि छोटे छोटे तीन अंकों के अन्तर्गत नाटककार ने एक विराट युग का चित्र अंकित किया है। नाटक की एक ही 'सैटिंग' है जिस की चित्रपटों पर नाटक के विभिन्न पात्रों के चरित्र की झलक पाठकों को मिलती है। उपक्रम उपसंहार आदि नवीन ढग के नाटकीय प्रयोग हैं जिन से नाट्यशैली में नवजीवन का संचार हुआ है। नाटक की शैली एकदम नवीन होते हुए भी नाटककार ने प्राचीन नाटकों की भान्ति इस में सूत्रधार आदि रखे हैं। सूत्रधार के साथ साथ वाचिकाओं का रखना स्वाभाविक ही था।

नाटक में चलती भाषा तक स्वाभाविक शैली का प्रयोग किया गया है। नाटक की शैली सरल से अधिक सरस, सरस से अधिक मधुर, आकर्षक तथा हृदयतल को स्पर्श करने वाली है। संवादों में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है तथा कहीं भी नाटककार ने भाषणप्रियता का सहारा नहीं लिया है।

देशकाल विधान :—श्री माथुर ने प्रस्तुत नाटक में दश-काल सम्बन्धी भूलों को आने नहीं दिया है। उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों को भली भान्ति संभालकर उन्हें नाटकोपयोगी बना दिया है। इस काल में जो एक ओर से राजनैतिक षड़यन्त्र चल रहे थे तथा दूसरी ओर से बंग देश में यवन सक्रिय थे, उसका संकेत नाटक में मिलता है।

नाटक में कथा का निर्वाह आदि से अन्त तक समान है और एक ही मुख्य कथावस्तु है। घटनाओं का तारतम्य नाटक की प्रमुख विशेषता है। नाटक में संकलनत्रय का भी अच्छा निर्वाह है।

रंगमंचीयता :—यह नाटक रंगमंच के नियमों को दृष्टि में रखते हुए लिखा गया है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने मंच-निर्देशक के लिए उचित निर्देशन भी दिया है तथा उसका कार्य सुगम कर दिया है। प्रत्येक अंक में रंगमंच की कल्पना के अनुसार उसका रेखाचित्र भी दिया गया है। प्रथम और द्वितीय अंक 'विशु' के कमरे में होते हैं और तीसरा मुख्य मन्दिर के सामने वाले अन्तराल में। 'विशु' के कक्ष से पूरे मन्दिर की झलक नहीं मिलती। केवल कुछ भाग ही दीख पड़ता है।

यहाँ मँच-निर्देशक खिड़की के पीछे पर्दे पर चित्र खींच सकता है तथा उसपर हल्का प्रकाश डाल सकता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि नाटककार श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने प्रस्तुत नाटक को सर्वथा नाटकोपयोगी बना दिया है।

उद्देश्य :— भारत की प्राचीन शिल्प कला का चित्रण करना तथा 'विशु' एवं 'धर्मपद' की पृष्ठभूमि में रखते हुए 'कला' को प्राचीन एवं अर्वाचीन मान्यताओं का चित्रण करना 'कोणार्क' नाटक का उद्देश्य रहा है तथा नाटककार को इस उद्देश्य की पूर्ति में परिपूर्ण सफलता मिली है।

प्रश्न :— "कला की जोत (ज्योति) अखंड़ विश्वास जगाये खंड़हर सोता है" इस कथन को पुष्टि 'कोणार्क' नाटक के आधार पर कीजिए।

उ०— हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री बचन ने कहा है "किसी युग के विश्वास विचार हुये हैं पाषाणों में बन्द" कहने का तात्पर्य यह है कि पाषाणों में अंकित मूक कथायें उस युग की मूक कथायें होती है जो न केवल उस युग की जनता प्रत्युत आगामी पीढ़ी को सुनाई जाती है। कलाकार का सन्देश एक शाश्वत सन्देश होता है। वह युग की ही नहीं, युग युग की कहावत है। परन्तु उसका सन्देश सर्वप्रथम युग की जनता के हित में होता है। कला की जगमगाती हुई 'ज्योति' तथा अखंड़ विश्वासी कहानी खंड़हर के खंड़ित पाषण-खंडों में सोई

हुई मिलती है। यह कहानी जितनी सरल होती है। उतनी ही विरल तथा निराली होती है।

'कोणार्क' नाटक का अध्ययन करने पर इस बात का स्पष्ट आभास पाठकों को होता है।

नाटक के अन्तिम अंक के अन्तिम चरण पर दृष्टि दौड़ाइए तो ज्ञात होगा कि किसप्रकार भगवान भास्कर का यह स्मृति पीठ धराशायी होता है। कलाकारों के कितने विचार और विश्वास, इच्छायें तथा आकांक्षायें, जीवन के सरल एवं विरल स्वप्न उन खड़हरों के नीचे दब कर रह जाते हैं। वे खड़हर वर्तमान पीढ़ी को गत वैभव की यह कहानी सुनाते हैं कि कितनी तन्मयता–तल्लीनता और अनुरक्त साधना के साथ महाशिल्पी 'विशु' ने इस महापीठ का निर्माण किया था परन्तु जब उसके मन-चातक का साक्षात्कार उस 'स्वाति-कण' के साथ हुआ उस समय वह पिपासा में ही अन्तर्धान हो गया, चातक चातक ही रहा उसकी प्यास बुझ न सकी।

इतना ही नहीं जब विधाता ने उसके लिए पुत्र का मिलन उसे कराया था, तब ही उसके अरमान धूलि–धूसरित हुए। वह सोचने लगा क्यों न इस साधनापीठ को ही काल की भेंट चढाया जाये।

इसके अतिरिक्त 'धर्मपद' की जीवन-कथा भी कोणार्क के ये खंड़हर सुनाते हैं। धर्मपद का जीवन विद्रोह की उस प्रवाहमय सरिता का प्रबल वेग हैं जिसका 'धर्म' परिपूर्ण उत्साह के साथ वहना है। कहने का तात्पर्य यह है कि

'कोणार्क' का खंड़हर अपने में भारत का प्राचीन शिल्प कला की ज्योति तथा उन अखंड़ विश्वासों को सजोये हुए सोया है।

अतः 'कोणार्क' नाटक पर यह उक्ति चरितार्थ होतो है :—
"कला की जोत, अखंड़ विश्वास जगाये खंड़हर सोता है।"

प्रश्न :– 'कोणार्क' नाटक के शीर्षक के औचित्य पर प्रकाश डालिए।

उ०— 'कोणार्क' नाटक का शीषक 'कोणार्क' कहां तक एक उचित शीर्षक है। इस पर विचार करते समय अनेक कल्पनायें मन में जागृत हो उठती है। सम्पूर्ण नाटक पढ़ने के पश्चात मेरे मन में यह विचार जागृत हो उठता है कि यदि इस नाटक का नामकरण 'विद्रोही धर्मपद' होता तो यह अधिक उपयुक्त तथा अनुकूल था क्योंकि नाटक के कथानक का मूलाधार 'धर्मपद' का महान, अतुलित एव गौरवशाली व्यक्तित्व है दूसरी कल्पना यह जागृत होती है कि इस नाटक में भारत की प्राचीन शिल्पकला एवं सांस्कृतिक जीवन-धारा के विषय में कहा गया है। नाटककार का उद्देश्य भी यही है कि कलाकार की जीवनसाधना का चित्र प्रस्तुत किया जाये। मन में विचार उत्पन्न होते हैं कि यदि प्रस्तुत नाटक का नामकरण 'कलाकार की साधना' होता तो अधिक उपयुक्त था।

परन्तु यदि अधिक गहराई के साथ तथा ध्यानपूर्वक देखा

जाये तो ज्ञात होगा कि 'कोणार्क' प्रस्तुन नाटक का उपयुक्त, उचित तथा युक्तिसंगत शीर्षक है।

यह ठीक है कि प्रस्तुत नाटक में भारतीय शिल्पकला तथा उस युग के कलाकारों की समस्याओं क विषय में कहा गया है। परन्तु इस बात की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है कि इस समस्त 'कला' का केंद्र 'कोणार्क' का महामन्दिर है।

'कोणार्क' क्या है। अथवा यह कहिए कि कोणार्क' क्या नहीं है। वह शिल्पी की कामना तथा साधना का प्रतीक है। वह बारह सौ शिल्पियों की बारह बरस की लम्बी साधना का मूर्त चिह्न अथवा कहिए कि महाशिल्पी विशु की विराट कल्पना की साकारता।

यह महामन्दिर भगवान भास्कर का स्मृति पीठ है। पाषाण का एक विशाल रथ सैंकड़ों गज़ लम्बा चौड़ा है जिसकी विष्ट दुर्ग-प्राचोर से वृहद हैं जिसके बारह चक्र और गिरि से विपुल हैं जिस के सात भव्य घोड़े। मन्दिर के भीतर एक अनोखा चमत्कार है। सूर्य अगवान की मूर्ति चुम्बक पत्थर के आकर्षण से निराधार शून्य में लटकी हुई है।

परन्तु कलाकार की साधना पूर्ण नहीं होती है। नाटक के अन्त में 'कोणार्क' का यह महामन्दिर धराशायी हो जाता है। अत्याचार, अनाचार तथा मानव की पाप-लीला के विरुद्ध भगवान भास्कर का प्रकोप जागृत हो उठता है तथा अत्याचार करने वालों का मूलोच्छेदन होता है।

कहने का अभिप्राय यह है कि 'कोणार्क' शीर्षक नाटक का उचित तथा उपयुक्त शीर्षक है क्योंकि नाटक का समस्त घटनाचक्र, चरित्र चित्रण तथा संवाद एवं उद्देश्य सबका केंद्र उड़ीसा का महामन्दिर 'कोणार्क' है।

——

प्रश्न :— "आज के राजिनैतिक-आर्थिक संघर्ष के जर्जर युग में 'कोणार्क' के द्वारा कला और संस्कृति जैसे अपनी चिरंतन उपेक्षा का विद्रोहपूर्ण सन्देश मनुष्य के पास पहुँचा रही है।" श्री सुमित्रानंद जी पन्त के इस कथन की पुष्टि कीजिए।

भारत एक सांस्कृतिक देश है। इस देश की प्राचीन संस्कृति इस देश के समस्त जीवन के लिए प्रेरणापद तथा स्फूर्तिदयिनी रही है। बर्तमान युग में भी जो सम्पूर्ण विश्व में हमारा मस्तक ऊँचा है उसका श्रेय भारत की उस प्राचीन संस्कृति तथा जीवन परम्परा को है।

कला और संस्कृति का परस्पर चोली -दामन का सम्बंध है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि 'कला' 'संस्कृति' का एक महत्वपूर्ण अंग है। किसी देश के कला कौशल का अवलोकन करते हुए ही हमें ज्ञात होता है कि सांस्कृतिक दृष्टिकोण से वह देश महान है। उद्धाहरणार्थ जब हम 'अजन्ता' अथवा 'एलोरा' की चित्रकला का मूल्यांकन

करते हैं तो स्पष्टतयः हमारी समझ में आता है कि हमारी प्राचीन संस्कृति कितनी गौरवशालिनी रही है।

वर्तमान जर्जर आर्थिक युग में जबकि मानव 'राजिनीति' तथा आर्थिक विड़म्बना के हाथों बिक रहा है यदि कलाकार अथवा लेखक हमारा ध्यान प्राचीन भारतीय जीवन तथा उसमें व्याप्त 'कला' एवं 'सस्कृति' की ओर ले जाये तथा हमें एक शाश्वत तथा सार्थक सन्देश दें तो इस प्रकार वह देश, समाज एवं राष्ट्र की भरपूर सेवा कर रहा है।

'कोणार्क' नाटक के रचयिता नाटककार श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने ऐसा ही महत्वपूर्ण कार्य किया है।

'कोणार्क' नाटक में पाठकों अथवा 'दर्शकों' को उड़ीसा के उस युग की झलक मिलती है जबकि कला और सस्कृति अपनी चरम सीमा पर थी। उस युग में 'विशु' जैसे 'महाशिल्पी' थे जो अपनी शिल्पकला से पत्थरों में थिरकन उत्पन्न करते थे। उन्हें सप्राण बनाते थे। उसी प्रकार 'सौम्यक्षी' जैसे कवि एवं संगीतकार वर्तमान थे जिन्होंने जयदेव के 'गीत-गोविन्द' की परम्परा का अणुसरण करते हुए 'गीत भास्करम्' का निर्माण किया था।

इतना ही नही पन्त जी का यह कथन शत प्रतिशत सत्य है कि इस नाटक के द्वारा पाठकों को विद्रोहपूर्ण सन्देश मिलता है। कलाकार को केवल मौन साधना एवं मूक आराधना में ही तल्लीन नहीं रहना चाहिए प्रत्युत अत्याचार एवं अनाचार के विरुद्ध विद्रोह की ध्वजा लिए कार्यक्षेत्र में उतरना चाहिए। धर्मपद का विद्रोही जीवन तथा भावावेशमय यौवन इसी बात का सन्देश होता है।

प्रसंग सहित व्याख्यायें

पाठ्यक्रम के अनुसार विद्यार्थियों से प्रसंग-सहित व्याख्यायें नहीं पूछी जायेंगी फिर भी प्रसग सहित व्याख्यायें किस प्रकार लिखी जाती हैं, इस बात को दृष्टि में रखते हुए कुछ अंशों की प्रसंग सहित व्याख्यायें यहाँ उदाहरणार्थ दी गई हैं।

पृष्ट—२६ "शिल्पी को विद्रोह की वाणी से लेकर मुझे उसकी कला चाहिए" तक।

प्रस्तुत गद्यांश श्री जगदीशचन्द्र माथुर लिखित 'कोणार्क' नाटक के प्रथम अंक से उद्धृत किया गया है। यह उस समय का प्रसंग है जबकि 'राजीव, और 'विशु' आपस में बातें कर रहे हैं। राजीव कहता है कि धर्मपद एक सोलह वर्षीय युवक है। वह एक विद्रोही युवक है जिस की वाणी में विद्रोह का ताप है।

यह सुनकर 'विशु' कहता है कि शिल्पी की वाणी में विद्रोह नहीं होना चाहिए। मेरी कला में जहाँ जीवन की प्रतिछाया है वहाँ उसके विरुद्ध विद्रोह की भावना भी निहित है। तुम उस युवक को मेरे पास ले आओ। मैं जिस समय उसकी ओर देखूँगा उसी समय उसकी प्रतिभा जागृत हो उठेगी तथा उस की वाणी मौन हो जायेगी।

पृष्ट — ४० "निर्दय अत्याचार की छाया में से लेकर नौबत ही क्यों आये ?" तक।

प्रस्तुत गद्यांश श्री जगदीशचंद्र माथुर लिखित 'कोणार्क, नाटक के प्रथम अक से उदुधृत किया गया है। यह उस समय का प्रसग है जबकि 'विशु' धर्मपद से कहता है कि मैं कलाकरों को किसप्रकार कहदूँ कि उनका जीवन विनाश की कगार पर खड़ा है।

इसपर धर्मपद उनसे सम्बोधित होकर कहते हैं कि वे कलाकार अत्याचारों को सहन करने के अभ्यस्त हो गये है क्योंकि इन अत्याचारों की छाया में उनका जीवन विकसित भी हुआ तथा मुर्झा भी गया है। उनको एकाध घड़ी के लिए तैयार करने का ही नहीं उठता। परन्तु मैं ऐस अवसर आने ही नहीं दूँगा

पृष्ठ – ५७ "बहुत हुआ बहुत हुआ दूत से लेकर प्रजा वत्सल नरेश श्री नरसिंह देव" तक ।

प्रस्तुन गद्यांश श्री जगदीशचद्र माथुर लिखित 'कोणार्क' नाटक के द्वितोय अंक मे उद्धृत किया गया है। यह उस समय का प्रसंग है जबकि शैवालिक तथा धर्म आपस में बातें कर रहे हैं। शैवालिक धर्मपद से कहता है कि कलाकार के राज्य की बातों में हस्ताक्षेप नहीं करना चाहिए।

इस पर धर्मपद कहता है कि कलाकार भेड़-बकरियों के समान नहीं हैं कि उनको कोई भो कहीं भी हांक सकता है। आज हमारे भाग्य का निर्णय है। जिस सिहांसन को आज तुम हिलाने का प्रयत्न कर रहे हो वह कलाकार के कंधों पर टिका हुआ है। उस पर वह कदापि नहीं बैठ सकता जिसने

अनेक घरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। वह जिसने कोणार्क के उन कलाकारों को तुच्छ मानकर ठुकराया जिन्होंने इसमें सौंदर्य का संचार कर दिया। कलिंग हमारा है और हमारे स्वामी जन-प्रिय सम्राट श्री नरसिंहदेव हैं।

पृष्ठ – ७७ "हे सूर्य भगवान से लेकर आ रहे हैं" तक।

प्रस्तुत गद्यांश श्री जगदीशचन्द्र माथुर लिखित 'कोणार्क' नाटक के तृतीय अंक से उद्धृत किया गया है। यह उस समय का प्रसंग है जबकि 'विशु' का सूर्य देवता के साथ साक्षात्कार होता है। सूर्य के जाज्वल्यमान स्वरूप को साष्टांग प्रणाम करते हुए विशु गीली वाणी में कहते हैं:—

"हे सूर्य देवता, मैंने बारह वर्षों की साधना के पश्चात इस महान स्मृतिपीठ का निर्माण किया। आज जबकि तुम्हारी उपासना का अवसर आया तो मैं क्या देखता हूँ कि तुम को वे लोग अपनाने जा रहे हैं जो शिल्पी के जीवन को ठुकरा रहे हैं।

टिप्पणी :— प्रसंग सहित व्याख्या करते समय पाठकों को लेखक का नाम, रचना का नाम तथा किस बात पर कथन कहा गया, है, अवश्य लिखना चाहिए।

कठिन शब्दों के अर्थ

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
विशाल	बड़ा या बड़ी	विरुद्ध	खिलाफ
वाहन	सवारी	विद्रोह	बगावत
सुवर्ण-श्रंखल	सोने की जंजीर	सन्निहित	छिपा हुआ
देवालय	देव मन्दिर	दृष्टि	नज़र
भविष्यवाणी	भविष्य में होने वाली बात।	स्पर्श	छूना
		प्रतिभा	बुद्धि
परिवर्तन	तब्दीली।	प्रतिभावान	बुद्धिमान
संकेत	इशारा	भव्य	शानदार
थिरक	नाच	अद्भुत	अजीब
सर्वेसर्वा	सब कुछ	कामदेव	प्रेम के देवता
अन्याय	बेइन्साफी	तर्क	विचार-विमर्श
आशंकाजनक	अशंका उत्पन्न करने वाली	भृत्यों	सेवकों
		अनुचित	बुरा
दंडपाशिक	तत्कालीन पुलिस	अश्वारोही	घुड़सवार
अल्प	थोड़ी	अत्याचार	जुल्म
तीक्ष्ण	तेज	विलास	ऐश्वर्य
विचित्र जीव	अजीब प्राणी	निरन्तर	लगातार
मौन	चुपचाप	चेष्टा	कोशिश
निर्निमेश	एकटक	खड्ग	तलवार
ओजमयी	जोश से भरी	मस्तक	माथा
प्रतिबिम्ब	परछाई	सूचना	खबर